© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2017

चरकसंहिता में प्रयुक्त सोपसर्ग धात्वर्थों का विवेचन

Dr. Seema Devi, Department of Sanskrit, Govt. Gollege Bahadurgarh

आयुर्वेदीय चिकित्सा वाङ्मय में 'चरकसंहिता' विश्वकोष के समान चिकित्सा–विधियों का एक आकर ग्रन्थ है। आयुर्वेद की समस्त प्रतिष्ठा का श्रेय इस ग्रन्थ रत्न को है। अग्निवेशतन्त्र (वर्तमान काल में च. सं. के नाम से प्रसिद्ध) ने ही परिष्कृत एवं उपबृंहित होकर च. सं. का रूप ले लिया। सुश्रुतसंहिता आदि का नाम प्रतिसंस्कार के बाद भी नहीं बदला, किन्तु चरककृत प्रतिसंस्कार इस अर्थ में विशिष्ट है कि उसने अपना प्रभुत्व स्थापित कर मूल प्रणेता को ही तिरोहित कर दिया।

प्रस्तुत शोध–पत्र में च. सं. में प्रयुक्त सोपसर्ग धात्वार्थों का विवेचन किया गया है। संस्कृत में उपसर्गों का वही स्थान है, जो स्थान गणित में शून्य का है जिस प्रकार अकेले शून्य का अपना कोई महत्त्व नहीं होता, परन्तु किसी अन्य अंक के पीछे जुडकर उसका महत्त्व दस गुणा हो जाता है। उसी प्रकार उपसर्गों का अपना कोई अर्थ नहीं होता, परन्तु धातु के आगे प्रयुक्त होकर ये भिन्न–भिन्न अर्थों को द्योतित करते हैं 'आख्यातमुपगृह्यार्थ–विशेषमिमे तस्यैव सृजन्तीत्युपसर्गाः'[1]।

(1) अभि √अस् 614 गतिदीप्त्यादानेषु, भ्वा. उभ. से.। अभ्यसेत्[2]–अवनीन्द्र कुमार द्वारा सम्पादित 'पाणिनीय धात्वनुक्रम –कोश' (पा.धा.को.)[3] में अभि उपसर्गपूर्वक √अस् धातु का अर्थ– 'अभ्यास करना'– है, परन्तु च.सं. में इसका अर्थ–'उपयोग करना'–है।

(2) वि √अस् 108 क्षेपणे, दिवा. प. से.। व्यवस्यति[4]–युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित 'संस्कृत–धातु–कोषः' (सं.धा. को.[5]) में व पा.धा. को.[6] के अनुसार वि √अस् धातु–'विभाग करना, हिस्सा करना'–अर्थों को द्योतित करती है, किन्तु च. सं. में इसका अर्थ–'प्रयत्न करना'–है।

(3) प्रति √ईक्ष् 394 दर्शने, भ्वा. आ. से.। प्रतीक्षते[7]–सं. धा. को[8]. तथा पा. धा. को.[9] में प्रति उपसर्ग पूर्वक ईक्ष् धातु का अर्थ–प्रतीक्षा करना'–है, परन्तु च.सं. के वर्तमान प्रयोग में इसका अर्थ–'कहना'–है।

(4) वि √कस् 490 गतौ, भ्वा. प. से। विकसेत्[10]–वि उपसर्ग पूर्वक √कस् धातु का अर्थ सं. धा. को.[11] व पा. धा. को.[12] के अनुसार–'खिलना'–हैं, किन्तु यहाँ इस अर्थ का प्रयोग न करके–'मारना'–किया है।

(5) अनु √काङ्क्ष 45 काङ्क्षायाम्, भ्वा. प. से। अनुकाङ्क्षेत्[13]–पा. धा. को.[14] में प्रति + आ उपसर्गों के योग में √काङक्ष् धातु–'प्रतीक्षा करना'–अर्थ की द्योतक है, किन्तु वर्तमान प्रयोग में अनु उपसर्ग के साथ भी इसी अर्थ का द्योतन हुआ है।

(6) वि √क्षिप् 5 प्रेरणे, तुदा. उभ. अ.। विक्षिपते[15]–वि उपसर्ग पूर्वक √क्षिप् धातु सं.धा. को.[16] व पा.धा. को.[17] में–'फैलाना'–अर्थ की बोधक है, किन्तु च. सं. के अर्थानुसार धातु का अर्थ–'घुमाना'–है।

(7) अनु √गम् 700 गतौ, भ्वा. प. अ.। अनुगतम्[18]–सं. धा. को.[19] तथा पा. धा. को.[20] में आ √गम् धातु का अर्थ–'आना'–है, किन्तु च. सं. में अनु उपसर्ग के साथ भी यही अर्थ व्यवहृत है।

(8) अव √गाह् 420 विलोडने, भ्वा. आ. से.। अवगाहामहे[21]–अव उपसर्ग के योग में √गाह् धातु सं. धां. को.[22] तथा पा. धा. को.[23] में–'अवगाहन करना, स्नान करना' अर्थों को संकेतित करती है, किन्तु यहाँ प्रंसगानुसार अर्थ–'समझना'–है।

(9) अव √तॄ 684 प्लवनतरणयोः, भ्वा. प. अ.। अवतारयेत[24]–सं.धा.को.[25] व पा. धा. को.[26] के अनुसार अव √ तॄ धातु–'उतरना'–अर्थ की बोधक है, किन्तु यहाँ अर्थ विषयानुसार–'प्रयोग करना'–है।

(10) पा √धा 17 धारणपोषणयोः, जु. उभ. अ.। परिधाय[27]–परि के योग में √धा धातु का अर्थ सं.धा.को.[28] तथा पा.धा. को.[29] में 'वस्त्रादि धारण करना,परिधान करना'–है, किन्तु यहाँ प्रंसगानुसार अर्थ–'बनाना'–मिलता है।

(11) उप √पद् 64 गतौ, दि. आ. से.। उपपादयेत्[30]–सं. धा. को.[31] के अनुसार उप उपसर्गपूर्वक √पद् धातु–'उत्पन्न होना, मिलना, प्राप्त होना, समीप रहना, चिपक के रहना'–अर्थों को व्यवहृत करती है, किन्तु प्रस्तुत प्रयोग में धातु–'अभ्यास करना'–अर्थ की द्योतक है।

(12) प्रति √पाल् 63 रक्षणे, चु. उभ. से.। प्रतिपालयेत्[32]–पा. धा. को.[33] में प्रति √पाल् धातु 'प्राप्त करना, रक्षा करना, देख रेख करना'–अर्थों की सूचक है, परन्तु च.सं. में इसका अर्थ–'प्रतीक्षा करना'–भी हुआ है।

(13) अभि √मुर्च्छ् 130 मोह–समुच्छ्रायोः, भ्वा. प. से। अभिमूर्च्छन्ति[34]–√मुर्च्छ् धातु सोपसर्गिक एवं निरुपसर्गिक मुख्यतया–'मूर्च्छित होना'–अर्थ को प्रकट करती है, किन्तु वर्तमान प्रयोग में यह–'प्रकट होना'–अर्थ की बोधक है।

(14) नि √रुप् 132 विमोहने, दि. प. से.। अनिरुप्य[35]–√रुप् धातु उपसर्गों के साथ भी मूलार्थ को व्यवहृत करती है, किन्तु यहाँ विषयानुसार–'अर्पण करना'–अर्थ की सूचक है।

(15) अनु + आ √लभ् 692 प्राप्तौ, भ्वा. आ. अ.। अन्वालभेत[36]–अनु + आ उपसर्गों के योग में √लभ् धातु सं. धा. को[37]. तथा पा. धा. को.में[38] –'स्पर्श करना'–अर्थ की बोधक है, किन्तु यहाँ विषयानुसार–'होम करना'–अर्थ है।

(16) आ √वप् 721 बीजसन्ताने, भ्वा. उभ. अ.। आवपेत्[39]–पा.धा.को.[40] में आ के योग में √वप् धातु–'बिखेरना, फैलना या फेंकना, उपहार या बलि देना'–अर्थों की सूचक है, परन्तु यहाँ अर्थ–'मिलाना'–है।

(17) अनु + प्र √विश् 131 प्रवेशने, तु. प. अ.। अनुप्रविश्य[41]–अनु + प्र √विश् धातु का अर्थ पा. धा. को.[42] में–'घुसना, किसी की इच्छा अनुसार अपने को ढालना'–है, परन्तु यहाँ विषयानुसार अर्थ–'जानना'–है।

(18) निर √वृत् 491 वर्तने, भ्वा. आ. से.। निर्वर्तयेत्[43]–सं. धा. को.[44] एवं पा.धा. को.[45] में प्र √वृत् धातु का अर्थ–'प्रारम्भ करना'–है, किन्तु यहाँ निर् उपसर्ग के साथ भी यही अर्थ द्योतित हुआ है।

(19) उप √सृ 700 गतौ, भ्वा. प. अ.। उपसृत्य[46]–पा. धा. को.[47] में प्र के योग में √सृ धातु का अर्थ–'व्याप्त करना'–है, किन्तु च. सं. के प्रस्तुत प्रयोग में उप उपसर्ग के साथ भी इसी अर्थ का द्योतन हुआ है।

(20) अव √सृज् 122 विसर्गे, तु. प. से.। अवसृजेत्[48]–पा.धा.को.[49] के अर्थानुसार अव √सृज् धातु–'फेंकना, मुक्त करना, यन्त्रणा मुक्त करना, मुख से निकलना, कहना, अर्पित करना, छूटना, प्रदान करना'–अर्थों को सूचित करती है, किन्तु वर्तमान प्रयोग में प्रसंगानुसार अर्थ–'बांधना'–मिला है।

(21) वि √स्तम्भ् 2 प्रतिबन्धे, सौत्र. प. से.। विष्टम्भयेत्[50]–वि √स्तम्भ् धातु पा. धा. को.[51] के अर्थानुसार–'धारण करना, आलम्बन लेना, व्याप्त करना, आक्रान्त करना'–अर्थों की बोधक है, किन्तु वर्तमान प्रयोग में विषयानुसार अर्थ –'फैलाना' – है।

(22) सम् √स्पन्द् 14 किञ्चिच्चलने, भ्वा. आ. से.। संस्पन्दते[52]– मुख्यतया सभी उपसर्गों के साथ √स्पन्द् धातु मूल धात्वर्थ–'कांपना, थरथराना, सरकना, जाना'–अर्थों को व्यवहृत करती है, परन्तु यहाँ धात्वर्थ–'प्रकट होना'–मिला है।

(23) सम् √श्रु 662 श्रवणे, भ्वा. प. अ.। संश्रुत्य[53]–सं. धा. को.[54] तथा पा. धा. को.[55] में प्रति √श्रु का धात्वर्थ–'प्रतिज्ञा करना'–हैं, किन्तु यहाँ सम् उपसर्ग के साथ भी इसी अर्थ का द्योतन हुआ है।

निष्कर्ष – भाषिक विवेचन में उपसर्गों का विशेष महत्त्व है। व्याकरण में उपसर्गों की स्थिति तीन रूपों में पाई जाती है–(1) अर्थबोधकता (2) अर्थानुवर्तन (3) अर्थवैशिष्ट्य। च.सं. में अनेक ऐसे उपसर्गों का प्रयोग मिला है जो संस्कृत धात्वर्थ–कोशों में संकेतित उपसर्गार्थों को द्योतित न करते हुए किसी अन्य ही अर्थ को संकेतित करते हैं या किसी अन्य उपसर्ग के अर्थ में किसी दूसरे उपसर्ग का प्रयोग है। इसका कारण ग्रन्थ की प्राचीनता समयानुसार उपसर्ग के अर्थों में परिवर्धन एवं परिह्रास है।

1 दुर्गवृत्ति–1.1.3
2 च. सं. I.5.10, 12
3 पा. धा. को.,पृ. 12
4 च. सं. IV.I.23
5 सं. धा. को.,पृ. 9
6 पा. धा. को.,पृ. 13
7 च. सं. I.13.29
8 सं. धा. को.,पृ. 12
9 पा. धा. को.,पृ. 21
10 च. सं. VIII.12.26
11 सं. धा. को.,पृ. 19
12 पा. धा. को.,पृ. 35
13 च. सं. I.15.11
14 पा. धा. को.,पृ. 35
15 च. सं. V.8.26
16 सं. धा. को.,पृ. 30
17 पा. धा. को.,पृ. 53
18 च. सं. I.5.11
19 सं. धा. को.,पृ. 34
20 पा. धा. को.,पृ. 61
21 च. सं. IV.5.3
22 सं. धा. को.,पृ. 35
23 पा. धा. को.,पृ. 63
24 च. सं. I.14.19
25 सं. धा. को.,पृ. 58
26 पा. धा. को.,पृ. 105
27 च. सं. IV.8.10
28 सं. धा. को.,पृ. 66
29 पा. धा. को.,पृ. 127
30 च. सं. III.20.22

31 सं. धा. को.,पृ. 74
32 च. सं. VII.12.62
33 पा. धा. को.,पृ. 151
34 (क) च. सं. I.26.39 (ख) वही, II.5.10
35 वही, I.8.20
36 वही, III.8.12
37 सं. धा. को.,पृ. 105
38 पा. धा. को.,पृ. 235
39 च. सं. VI.2(1).37
40 पा. धा. को.,पृ. 244
41 च. सं. III.1.3
42 पा. धा. को.,पृ. 251
43 च. सं. IV.8.11
44 सं. धा. को.,पृ. 115
45 पा. धा. को.,पृ. 255
46 च. सं. II.7.4
47 पा. धा. को.,पृ. 290
48 च. सं. IV.8.44
49 पा. धा. को.,पृ. 290
50 च. सं. VI.30.26
51 पा. धा. को.,पृ. 296
52 च. सं. IV.4.15
53 वही, VI.1(4).55
54 सं. धा. को.,पृ. 124
55 पा. धा. को.,पृ. 276